राष्ट्रनिर्माता गांधी

जनवरी
१९५०

पब्लिकेशन्स डिवीज़न
मिनिस्ट्री आफ़ इन्फार्मेशन ऐण्ड ब्राडकास्टिंग, गवर्नमेंट आफ़ इण्डिया
ओल्ड सेक्रेटैरियट, दिल्ली

मूल्य ।।) आने

विषय सूची

युग पुरुष

महात्मा गांधी युग-पुरुष थे। ऐसे महापुरुष संसार में कभी कभी जन्म लेते हैं। हम भारतवासियों के लिये यह गौरव की बात कि हमें महात्मा गांधी जैसा महान् उद्धारक नेता मिला, जिसने न केवल अपने नेतृत्व से देश को स्वाधीन बनाया, बल्कि हमारे सामने एक ऐसा आदर्श उपस्थित किया जिस पर चलकर हम जहां संसार में एक उन्नतिशील राष्ट्र के नागरिक बन सकते हैं, वहां हमारा देश अन्य देशों के लिये एक आदर्श उपस्थित कर सकता है।

महात्मा गांधी कोरे राजनीतिज्ञ नहीं थे। वे एक महान् सन्त, सुधारक, अर्थशास्त्री और समाजशास्त्री भी थे। एक सरसरी निगाह में वे भूत, वर्तमान और भविष्यत् तीनों का पर्यवेक्षण कर लेते थे। उनकी पैनी दृष्टि जहां अतीत की गहराई की थाह लगा लेती थी, वहां भविष्य की ऊंचाई का अनुमान लगाने में भी उन्हें देर नहीं लगती थी। उनका एक एक कदम नपा तुला होता था। उनके सामने कुछ व्यापक सिद्धान्त

थे, जिन पर चलते हुए वे मनुष्य-समाज के पुनर्निर्माण में लगे रहते थे। उनका सारा जीवन एक वैज्ञानिक के समान था, जो सत्य की खोज करता रहता है, और उसे व्यवहार में लाकर लोगों के सामने रख देता है।

गांधीजी सत्य और ईश्वर में भेद नहीं करते थे। वे ईश्वर को सत्य स्वरूप मानते थे। अहिंसा उनका साधन थी, वह भी ऐसा जिसे वे अपने जीवन में छोड़ने को तैयार नहीं थे। अपने जीवन में और भारत की राजनीति में उन्होंने सत्य और अहिंसा दोनों को उतार कर सभ्य संसार के सामने एक ऐसा उदाहरण रखा है जिसकी तुलना नहीं है।

भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता को गांधीजी ने जीवन का ध्येय इसलिए बनाया कि उनकी समझ में चालीस करोड़ भारतीयों की वास्तविक उन्नति परतंत्रता में रहकर नहीं हो सकती थी। भारत के दलित, पीड़ित, और उपेक्षित मानव-समाज को उन्होंने देखा। चालीस करोड़ भारतीयों के भीतर से उन्हें अपनी ही आत्मा झांकती हुई दिखाई दी, और उन्होंने उसके संकट को दूर करने का व्रत ले लिया। इतना ही नहीं, वे यह भी जानते थे कि भारत की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था इतनी सड़-घुन गई है कि जब तक उसका नवनिर्माण नहीं होगा तब तक राजनीतिक स्वतंत्रता पाकर भी वह सुखी और समृद्ध नहीं होगा। इसीलिए उन्होंने ऐसे उपाय ढूंढ निकाले, ऐसे रचनात्मक कार्य आरम्भ किये, जिनका दोहरा महत्व था। रचनात्मक कार्य द्वारा उनकी काया-पलट करने का संकल्प करके उन्होंने काम आरंभ किया। खादी का आंदोलन, ग्राम सुधार, स्वदेशी आंदोलन, अछूतोद्धार, नारी आंदोलन, मादक द्रव्य निषेध, राष्ट्रीय शिक्षा, राष्ट्रभाषा-प्रचार आदि ऐसे काम हैं जिन पर गांधीजी ने बहुत अधिक जोर दिया। उन्होंने इसी दृष्टिकोण से तरह तरह की संस्थाओं को जन्म दिया, और तरह तरह के आंदोलन चलाये।

उनकी कार्य-प्रणाली अहिंसात्मक होने के साथ ही अत्यन्त सरल होती थी। किन्तु उसमें व्यावहारिकता की कमी न थी। गांधीजी इस अर्थ में पक्के यथार्थवादी थे। किसी भी काम को आरंभ करने के पहले वे उस पर बहुत सोचते थे। व्यावहारिक कठिनाइयों पर वे गम्भीरता से विचार करते थे और विपरीतावस्था में अपनी भूल को सुधारने में प्रत्येक

अवस्था में तैयार रहते थे। दिखावा, झूठी प्रतिष्ठा, सस्ती लोकप्रियता से वे कोसों दूर थे। इसी का यह परिणाम था कि जो लोग प्रारम्भ में उनकी कार्य-प्रणाली की खिल्ली उड़ाते थे, वे ही कुछ समय बीतने पर उनकी सफलता से इतने प्रभावित हो जाते थे कि आदर और सम्मान से उनके चरणों में उनका मस्तक झुक आता था।

धन, वैभव, पारिवारिक सम्मान या अथाह विद्वत्ता इनमें से किसी बात का दावा गांधीजी को विचलित नहीं कर सकता था। सत्य को समझ कर अपने प्राणों की बाजी लगा कर सत्य की रक्षा करने के लिए एक बार दृढ़प्रतिज्ञ हो जाने के बाद उनको विचलित करनेवाली शक्ति संसार में कोई नहीं थी। इसी का परिणाम यह निकला कि देखते ही देखते राजनीतिज्ञ नेताओं ने उनका नेतृत्व स्वीकार कर लिया। बड़े बड़े धनपतियों ने अपना सर्वस्व उनके चरणों में भेंट कर दिया और बड़े बड़े धार्मिक नेताओं को यह साहस नहीं हुआ कि उनकी व्यवस्था के सामने क्षण भर भी खड़े रह सकें।

गांधीजी के द्वारा बताई हुई आर्थिक सामाजिक व्यवस्था हमारे लिए ऐसी योजना प्रस्तुत करती है जिसके सहारे हम अपने देश का पुनर्निर्माण कर सकते हैं। देश से गरीबी, अशिक्षा, बेकारी, भूख और रोगों का संहार किया जा सकता है, और यह सारा देश सुखी, समृद्ध और ऐश्वर्यशाली हो सकता है। उस स्थिति में हमें चारों ओर धन धान्य से भरे पूरे गाँव और नगर दिखाई देंगे। घातक बीमारियों और महामारियों का नाम निशान न होगा और भारतवर्ष सुरक्षित, स्वस्थ और चरित्रवान् नागरिकों का देश होगा।

गांधीजी एक पराधीन देश में पैदा हुए थे, जहाँ मनुष्य के अधिकार छीने जा चुके थे। आर्थिक शोषण का जाल एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैल चुका था। समाज में ऊंच-नीच का भेद-भाव इतना गहरा हो चुका था कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को अपने समान समझने में लज्जा और अपमान का अनुभव करता था। परन्तु उन्होंने अपनी पराधीनता और दुर्दशा का कारण ढूंढ निकाला, उसको दूर करने की भरपूर चेष्टा की। उन्होंने अपने जीवन में ही राजनीतिक मुक्ति दिलाकर उसे एक आदर्श देश बनाने के प्रयत्न में अपने जीवन की बलि दे दी।

खादी

भारत की गरीबी ने गांधीजी के जीवन को बहुत अधिक प्रभावित किया था। इसका प्रभाव उनके जीवन पर इतना अधिक हुआ कि अमीरी से अपना नाता तोड़कर उन्होंने गरीबी का जीवन अपनाया। गांधीजी को साधारण लंगोटी पहनने की प्रेरणा उन्हें अपने उन करोड़ों देशवासियों से मिली थी जिनको लज्जा-निवारण के लिये भरपूर वस्त्र नहीं मिलता। गरीब भारतवासियों के लिये उनके हृदय में इतनी ममता थी कि उन्होंने अपने को दरिद्र-नारायण का उपासक घोषित किया। उन्होंने अपना रहन-सहन बिल्कुल सीधा-साधा बना दिया और अपने जीवन का एक-एक क्षण उनकी दशा सुधारने के प्रयत्न में लगा दिया।

गांधीजी ने भारत की गरीबी की समस्या को कोरी भावुकता से नहीं देखा था। उसके पीछे उनका गम्भीर चिन्तन था। उन्होंने भारत की गरीबी के पीछे छिपे हुए रहस्य को समझा। उन्होंने यह देखा कि भारत

की गरीबी उसे इसलिये परेशान कर रही है कि उसका व्यापार उसके हाथ से निकल गया है। उसके उद्योग-धन्धे उसके हाथ से छीने गये हैं।

ईस्ट इन्डिया कम्पनी के जमाने में ही पहले तो भारत का विदेशी व्यापार छिन गया, और धीरे-धीरे उसके उद्योग-धन्धे उसके हाथ से निकल गये। एक समय था जब भारत अपने वस्त्र-उद्योग के लिये संसार भर में प्रसिद्ध था। परन्तु जब इंगलैण्ड की मिलों में सूती कपड़ा बनने लगा, तो ब्रिटिश सरकार ने ऐसी नीति अपनाई जिससे धीरे धीरे यहां से यह उद्योग खत्म हो गया। पहले तो उसने इंगलैंड में भारत के सूती माल की खपत बन्द करवाई, और बादमें भारत में प्रत्येक उचित और अनुचित उपाय से वस्त्र-उद्योग को नष्ट करने का प्रयत्न किया। उद्योग-धन्धे में समुन्नत देश को घसीट कर फिर से कृषि पर ही गुजर-बसर करने के लिये बाध्य किया गया। और कृषि भी कैसी? बिलकुल बाबा आदम के जमाने की। इसका स्वाभाविक परिणाम था बेकारी और गरीबी। भारत जैसे विशाल देश का कपड़े के लिये इंगलैंड का मुंह ताकना एक बड़ी बात थी। इससे इंगलैंड को करोड़ों रुपये साल का लाभ होने लगा, और भारत की आर्थिक अवस्था खराब होने लगी। गांधीजी ने स्वयं लिखा है: जब से गांव में चलनेवाले अनेक उद्योगों में से इस उद्योग का और इसके आसपास लगी हुई कई दस्तकारियों का बिना सोचे समझे मनमाने तरीके से और बेरहमी के साथ नाश किया गया है, तब से हमारे गांवों की बुद्धि और तेज नष्ट हो गया है—वे सब निस्तेज और निष्प्राण बन गये हैं, और उनकी हालत उनके अपने भूखों मरनेवाले मरियल ढोरों की सी हो गई है।

हमारे देश के दूसरे नेता भी इस स्थिति को समझते थे। १६०५ का स्वदेशी आन्दोलन इस बात का प्रमाण है। परन्तु गांधीजी ने ही इसे अखिल भारतीय रूप दिया, और उससे बचकर निकलने का यही उपाय भी उन्होंने ही निकाला। गांधीजी के लिये यह असह्य था कि भारत के सात लाख गांवों को चूस-चूस कर इंगलैंड के थोड़े से शहर मालामाल हों। वे तो चाहते थे कि भारत के ये गांव स्वावलम्बी बनें, और पराधीनता का मूलोच्छेद किया जाय। गांधीजी ने देखा कि विदेशी कपड़े के बहिष्कार को तब तक सफल नहीं बनाया जा सकता, जब तक

देश में सबके लिये कपड़ा तैयार करने की कोई व्यावहारिक योजना न बने। इसके लिये गांधीजी ने खादी तैयार करने की योजना बनाई, और चर्खे को अपनाया। सूत कातना सबके लिये पवित्र कर्तव्य निश्चित हुआ, और कताई और बुनाई का आन्दोलन चल पड़ा। स्वाधीनता के आन्दोलन के साथ यह आर्थिक स्वावलम्बन का आन्दोलन एक विशेष महत्व रखता है। देखते देखते यह आन्दोलन देश-व्यापी हो गया। चर्खा या तकली का चलाना प्रत्येक कांग्रेसी का कर्त्तव्य हो गया, और खादी स्वाधीनता की लड़ाई लड़नेवालों की वर्दी बन गई। खादी बुनने के केन्द्र स्थापित होने लगे। हजारों देश-भक्त कार्य-कर्ता स्कूल, कालेज, अदालत, सरकारी नौकरी और व्यापार-व्यवसाय का मोह छोड़कर मैदान में उतर गये। इस तरह खादी के उत्पादन का काम तेजी से आगे बढ़ने लगा। गांधी-आश्रम तथा अन्य इस प्रकार की संस्थाओं का उदय हुआ, जिनका अन्यतम मुख्य कार्य खादी-प्रचार तथा खादी-उत्पादन हुआ। बाद को इन्हीं को पिरोकर अखिल भारतीय रूप में चर्खा-संघ का उदय हुआ। इसने अधिकारी रूप से खादी उत्पादन के संगठन को अपने हाथों में लिया। चर्खा-संघ और गांधी- आश्रम की तरह संस्थाओं ने अखिल भारतीय संगठन का रूप धारण कर लिया। कपास बोना, चुनना, साफ करना, ओटना, रूई धीनना, पूनी बनाना, कातना, सूत को मांड लगाना, सूत रंगना, उसका ताना भरना और बाना तैयार करना, सूत बुनना और कपड़ा धोना ये सभी काम चर्खा -संघ के केन्द्रों में होने लगे, और अधिक से अधिक लोगों को इनकी ओर आकर्षित किया गया। इससे भारत के हजारों गांवों में बसे हुए लाखों जुलाहों को आजीविका मिली। ब्रिटेन की सरकार का भारतीय लोकमत की दृढ़ता और शक्ति तथा गांधीजी के महान् व्यक्तित्व का अनुभव हुआ, और भारत की स्वाधीनता के लिये लड़नेवाले देशभक्तों को मिली आत्मनिर्भर बनानेवाली राष्ट्रीय पोशाक। गांधी जी के शब्दों में खादी हिन्दुस्तान की जनता की एकता की, उसकी आर्थिक एकता और समानता की प्रतीक है, और इसलिये जवाहरलाल के काव्यमय शब्दों में तो वह "हिन्दुस्तान की आजादी की वर्दी है"।

किन्तु इस काम के पीछे, इस अभूतपूर्व सफलता की तह में गांधीजी की वह लगन थी जिसे हम सफलता का मूल मन्त्र कह सकते हैं,

जब तक उनके शरीर में शक्ति रही उन्होंने कातना नहीं छोड़ा। चर्खा आन्दोलन के इतिहास को गहराई से अध्ययन करनेवाले ही उसके महत्व को समझ सकते हैं। कांग्रेस को दृढ़ और लोकप्रिय बनाने में जितना काम चर्खा-आन्दोलन से हुआ उतना और किसी भी कार्य-क्रम से नहीं हुआ।

खादी के घर-घर में प्रवेश होने से लोगों में समानता, बलिदान और एकता की भावना प्रबल हुई। राष्ट्रीय गानों में चर्खा और खादी को स्थान मिला और वे गीत जनता की जबान पर ऐसे चढ़े मानो विरह और बलिदान के गीत हों। उन्होंने देशभक्ति की लहर चारों ओर दौड़ा दी, जिससे बालक, वृद्ध, नर, नारी सभी प्रभावित हुए। गांधीजी का यह कथन इसे देखने पर अक्षरशः सत्य जान पड़ता है: "खादी का मतलब है, देश के सभी लोगों की आर्थिक स्वतंत्रता और समानता का आरम्भ।"

गांधीजी खादी को पूर्णरूप से स्वावलम्बी उद्योग बनाना चाहते थे। वे चाहते थे कि जहां कहीं भी कपास की उपज हो सकती हो, प्रत्येक किसान अपनी भूमि में कपास की उपज करे ताकि उसे सूत के लिये परावलम्बी न रहना पड़े। चर्खे आदि के साधनों में भी वे ऐसी खोजों और नवीनताओं को पसन्द करते थे जिससे वह साधन तथा उसकी मरम्मत देहाती अपने आप कर सकें। इस दृष्टि से वे धनुष-तकुआ को प्रोत्साहन देते थे क्योंकि इसमें किसी बाहरी व्यक्ति की सहायता की आवश्यकता नहीं थी। वे चाहते थे कि हमारे गांव खादी की इतनी उत्पत्ति कर लें कि वह उनके अपने उपयोग के लिये तो हो ही, साथ ही शहरों की जरूरतों को पूरा करने के लिये भी काफी हो।

यही कारण है कि गांधीजी ने कताई को एक यज्ञ का रूप दिया था। उनका कहना था कि प्रत्येक भारतवासी प्रतिदिन एक घण्टा कताई के लिये दे, तो वस्त्र की समस्या आसानी से हल हो सकती है। इसके अतिरिक्त वे यह भी चाहते थे कि वस्त्र के उत्पादन का विकेन्द्रीकरण हो। अन्य उद्योग-धन्धों की तरह उसे केन्द्रित होने देने के पक्ष में वे नहीं थे। वस्त्र-व्यवसाय के केन्द्रित होने से गांव की जनता कभी भी स्वावलम्बी नहीं हो सकती। अन्न और वस्त्र की ओर से स्वावलम्बन के बिना गांवों को आर्थिक स्वराज्य नहीं मिल सकता। गांधीजी ने इस रहस्य को भली

भांति समझा था और उसी के अनुसार उन्होंने खादी के कार्यक्रम को इतना अधिक महत्व दिया था। आज यदि हम लोगों ने गांधीजी के दिखाये हुए मार्ग का पालन अधिक दृढ़ता से किया होता, तो वस्त्र की कमी से न तो हमें कष्ट उठाना पड़ता और न वस्त्र व्यवसाय में चोर बाजारी के लिये कहीं गुंजाइश होती।

ग्राम सुधार

हमारा देश गांवों का देश है। हमारी समृद्धि गांवों की समृद्धि में निहित है। गांधीजी ने इस रहस्य को समझा था, और इस बात पर पूरा जोर दिया कि गांवों का सुधार तेजी से होना चाहिए।

देश पर विदेशी प्रभुत्व स्थापित होने के पहले हमारे देश के सात लाख गांव स्वावलम्बी थे। अपनी आवश्यकता की प्रायः सभी वस्तुएं वे या तो खेतों से पैदा कर लेते थे अथवा अपनी झोंपड़ियों में फलने-फूलनेवाली वस्तुओं से उनकी पूर्ति हो जाती थी। मनुष्य के जीवन में सबसे महत्वपूर्ण वस्तु भोजन है, और भोजन की प्रायः प्रत्येक वस्तु गांव में तैयार होती थी। सब तरह के अन्न वहां पैदा होते थे; पशुओं से घी-दूध मिल जाता था, और तेलहन से तेल और कपास से कपड़े का प्रबन्ध हो जाता था। मतलब यह कि गांववाले दूसरों पर यानी शहर के अपने भाइयों पर किसी बात के लिये आश्रित नहीं थे। गांव-वालों के दिये हुए अन्न, वस्त्र, दस्तकारियों की चीज़ों पर शहर के लोगों

का वैभव निर्भर था। परन्तु देश में विदेशियों का आना क्या हुआ, यहां का सामाजिक ढांचा ही बदल गया। सबसे पहले गांवों से उद्योगों का नाश हुआ। इसका प्रभाव यह हुआ कि बहुत सी जरूरी वस्तुओं के लिये गांववालों को शहरों का प्रकारान्तर से विदेश का, मुंह ताकना पड़ा। उधर सारा भार कृषि पर पड़ने से हमारे खेतों की पैदावार गांव के निवासियों का भरण-पोषण करने में असमर्थ हो गई। इस परिवर्तन से नगरों को वैसी क्षति नहीं पहुंची क्योंकि जो नगर पहले गांवों की उपज के लिये व्यापार के केन्द्र बने हुए थे, वे अब विदेश का माल गांवों में खपाने का काम करने लगे। परन्तु इससे गांवों को भारी क्षति पहुंची। वे दिनों दिन गरीब होने लगे, इसका परिणाम यह हुआ कि भारत के ये हरे-भरे गांव धीरे धीरे अपना ऐश्वर्य खो कर घूरे के ढेर बन गये।

गांधीजी ने गांवों की गन्दगी और गरीबी को खूब गहराई से देखा और उन्हें दूर करने के लिये बहुत ही संलग्नता से काम किया। महात्मा गांधी भारतीय गांवों की दुर्दशा देखकर उन्हें घूरे कहा करते थे और बात भी वास्तव में ऐसी ही है। हमारे गांवों में अधिकांश ऐसे हैं जिनमें प्रवेश करते हुए वहां आस-पास फैली हुई गन्दगी को देख कर कोई भी सफाई-पसन्द आदमी घबरा जायगा। कहीं आंख मूंदनी पड़ेगी तो कहीं नाक पर रुमाल लगाकर बदबू से बचना होगा। यहां की गरीबी से उनके हृदय को मार्मिक आघात पहुँचा, और उन्होंने इस गन्दगी और गरीबी के दूर करने के लिये भरपूर चेष्टा की।

उन्होंने देश-सेवकों को सलाह दी कि गांवों को सुधारने के लिये वे गांववालों में घुल मिल जायें। उनके नेतृत्व में कांग्रेस ने ग्राम सुधार के कार्यों को महत्व दिया। अखिल भारतीय कांग्रेस का अधिवेशन ग्रामीण क्षेत्र में होने लगा और जब प्रान्तों में कांग्रेस सरकार की स्थापना हुई तो योजना बनाकर गांवों को उन्नत बनाने का काम भी आरम्भ हुआ।

गांवों में काम करनेवालों के लिए गांधीजी ने आदर्श जीवन व्यतीत करने पर जोर दिया। जो भी आश्रम या केन्द्र खोले गये, वहां वैयक्तिक और सामाजिक स्वास्थ्य-रक्षा के नियम कठोरता से पालित हुए। सब के लिये साफ-सुथरा रहना, जहां तहां कूड़ा न फेंकना, और न थूकना, सार्वजनिक स्थानों, जलाशयों आदि अथवा घर के पास मल त्याग

न करना और गन्दगी को साफ मिट्टी से ढकना सब के लिये आवश्यक कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि इन आश्रमों से सम्पर्क में आने वाले लोगों को बिना बताये ही यह अनुभव होने लगा कि इन आदतों का पालन करना अनेक प्रकार की बीमारियों से बचाता है और लोगों को सुसंस्कृत नागरिक बनाता है। यही नहीं वही गन्दगी खाद बन कर सोना बन जाती है, और मिट्टी का खेत सोने की फसल उगलने लगता है। साथ ही सफाई का काम केवल भंगी का है यह भ्रम भी लोगों की आंखों से दूर होने लगा। जिसका फल यह हुआ कि ऊंच-नीच का भेदभाव अपने आप ओझल होने लगा।

गांधीजी यह बात बार बार दुहराते थे कि हमारे गांव ही हमारे देश की रीढ़ की हड्डी हैं और इसीलिये अपने रचनात्मक कार्य का क्षेत्र उन्होंने गांवों को ही चुना। जिस तरह उन्होंने सफाई पर जोर दिया उसी तरह उन्होंने खेती, खादी, ग्रामोद्योग, शिक्षा, चिकित्सा आदि में भी सुधार के रास्ते निकाले। गांधीजी के जीवन की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उनके साधन सुलभ और सामान्य कोटि के होते थे परन्तु उनके काम करने की प्रणाली ऐसी थी कि उन साधनों से वे बड़े-बड़े काम लिया करते थे।

गांवों का मुख्य उद्योग खेती है, परन्तु लगातार शोषण होने से जिस प्रकार भारतीय किसान गरीब हो गये हैं उसी प्रकार भारत की जमीन भी अपना उपजाऊपन खो चुकी है। कुछ जमीनें सिंचाई आदि की व्यवस्था न होने से ऊसर पड़ी हैं। गोबर आदि से जो खाद खेतों को मिल सकता है, उसका बहुत बड़ा भाग ईंधन के रूप में जल जाता है। गांधीजी ने इस बात पर जोर दिया कि जमीन को गांव की ही खाद डाल कर उपजाऊ बनाया जाय, इससे जहां सफाई बढ़ेगी वहां खेती की उपज कई गुना बढ़ जायगी। उन्होंने मशीनों से खेती करने की लम्बी-चौड़ी योजनाओं को सामने रखने की अपेक्षा किसानों को स्वावलम्बन का पाठ पढ़ाया।

खेती में खाने के अन्न के अतिरिक्त थोड़ी बहुत कपास भी पैदा करने पर गांधी जी ने जोर दिया ताकि खादी के लिये कपास की कमी न रहे, और गांववाले कपास के लिये परावलम्बी न रहें। खेती-योग्य धरती में तम्बाकू या मिलों में चीनी बनाने के लिये गन्ना उपजाने के भी वे

विरोधी थे। इसमें सन्देह नहीं कि इससे कुछ क्षेत्रों में किसानों का आर्थिक लाभ हो जाता है, परन्तु यह आर्थिक लाभ की प्रवृत्ति ऐसी भयङ्कर है कि इससे उसका लोभ बढ़ता जाता है। परिणाम यह हो जाता है कि इससे किसान परावलम्बी होने लगता है। कल्पना कीजिये एक गांव की जहां आवश्यकता की सभी चीजें पैदा होती हैं, और वहां के निवासी संतोषपूर्वक अपना जीवन निर्वाह करते हैं। और फिर उसकी तुलना एक ऐसे गांव से कीजिये जहां के किसान तम्बाकू या गन्ना पैदा करके उसे बेच देते हैं और उससे मिलनेवाले पैसे से अपने लिये जीवन के लिए आवश्यक वस्तुएं खरीद कर व्यवहार करते हैं।

वे चाहते थे कि भूमि में फसल का उत्पादन इस प्रकार हो कि पहले खाने के लिये अन्न के उत्पादन को प्रधानता दी जाय। गांवों के लिए खजूर और ताड़ से गुड़ बनाने की भी उन्होंने सलाह दी।

इसी प्रकार उन्होंने गांवो के लिए पशुधन को उन्नत करने की सलाह दी। ट्रैक्टरों से खेती करके भारत जैसे देश की समस्या कभी हल नहीं हो सकती। न तो भारतीय किसानों के पास ट्रैक्टर खरीदने के लिये पैसा है और न सब जगह खेती करने के लिये ट्रैक्टर मिल सकते हैं। इसीलिये गांधीजी ने पशुधन को उन्नत करने की, गो-सेवा की सलाह दी जिससे किसानों को खेती-बाड़ी के काम के लिये उत्तम बैल मिलें, दूध की कमी न हो और खेतों में गोबर की खाद पहुंचे। फिर इन बैलों के चलाने के लिये न तो पेट्रोल की आवश्यकता है न होशियार ड्राइवर की। बड़ी बड़ी जमीनोंवाले थोड़े से धनी किसान इससे लाभ उठा सकते हैं, पर इससे सारे देश की उन्नति नहीं हो सकती।

खेती के काम में गांववालों का सारा समय नहीं लगता, और अवकाश के समय में वे और बहुत से काम कर सकते हैं। भोजन के बाद मनुष्य की दूसरी बड़ी आवश्यकता वस्त्र की है। वस्त्र की दृष्टि से स्वावलम्बी बनाने का सबसे बड़ा उपाय खादी का उत्पादन है। अवकाश के समय काम करके गांव वाले अपने लिये ही नहीं, औरों के लिये भी कपड़ा तैयार कर सकते हैं। इस काम में छोटे बड़े स्त्री पुरुष सब लोग सहायक हो सकते हैं। इस प्रकार तैयार किया गया कपड़ा एक विशेष उद्योग का रूप धारण कर सकता है। देश भर में फैले हुये खादी-भण्डारों को देख कर कौन यह कह सकता है कि खादी-

उद्योग के पुनरुत्थान का कार्य गांधीजी ने १६२१ के आन्दोलन से कुछ ही पहले किया था।

खादी के अतिरिक्त गांवों में आसानी से चलनेवाले और दूसरे उद्योग भी हैं जिन पर गांधीजी ने जोर दिया है। हाथ से पीसना, हाथ से कूटना और पछोरना, गुड़ बनाना, साबुन बनाना, कागज बनाना, दियासलाई बनाना, चमड़ा बनाना, तेल पेरना आदि ऐसे काम हैं जिनके लिये न तो कच्चे माल की कमी है और न साधन की। आवश्यकता बस इस बात की है कि इन कामों के लिये मशीनों का उपयोग न हो और पढ़े-लिखे लोग इसके महत्व को समझ कर गांववालों को ठीक रास्ता बतायें। जहाँ कहीं भी इस प्रकार कार्य किया गया वहां गांववालों की आर्थिक अवस्था सुधरी और लोगों को अच्छा, साफ-सुथरा और उपयोगी सामान सरलता से मिलने लगा।

गांवों को स्वावलम्बी बनाने के लिये यह आवश्यक है कि गांव के लोग ग्रामोद्योगों को अधिक से अधिक उन्नत बनावें जिससे न केवल उनकी आवश्यकताओं की ही पूर्ति हो बल्कि दूसरी ऐसी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये वे धन भी उपार्जित कर सकें।

खादी–आन्दोलन को सफलतापूर्वक चलाने के लिए ही अन्य कई उद्योग आवश्यक हैं जैसे कपड़े की छपाई रंगाई आदि, पर ग्रामोद्योग का क्षेत्र तो बहुत बड़ा है। गांवों की पुरानी आर्थिक व्यवस्था में लुहार, बढ़ई, जुलाहा, कुम्हार, नाई, तेली, धोबी, गड़ेरिया, चमार सबके लिये स्थान था। इनके अलावा ताड़ी निकालनेवाले, टोकरियां और चटाइयां बुननेवाले, रस्सी और बान तैयार करनेवाले भी थे और सबका निर्वाह गांव में हो जाता था। उस समय देशी और विदेशी कारखानों का माल आकर इन दस्तकारों को बेकार नहीं बना सकता था।

पराधीन भारत में जब गांवों की आर्थिक व्यवस्था ही विदेशी शासन और विदेशी सत्ता के कारण धूल में मिल गई तो गांधीजी ने न केवल खादी और उससे सम्बन्ध रखनेवाले उद्योगों तक ही अपने को सीमित रखा बल्कि उन्होंने और दूसरे ग्रामोद्योगों का संगठन करने के लिए प्रयत्न किया। उन्होंने इस काम को ठीक ढंग से चलाने के लिए अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ की स्थापना की, जिसका उद्देश्य गांवों में तरह

तरह के उद्योगों को प्रचलित करना और इन उद्योगों के उत्पादन को खपाना है।

गांधीजी ने इस बात पर जोर दिया कि लोग मशीन का आटा-चावल खाकर अपना स्वास्थ्य न बिगाड़ें और न गांव के लाखों आदमियों को इस प्रकार बेकार बेरोजगार और आलसी ही बनावें, बल्कि उन्हें चाहिए कि भोजन और वस्त्र के अतिरिक्त अपनी आवश्यकताओं के लिए दूसरी चीजों का उत्पादन गांवों में करें और उनका व्यवहार करें।

इसका प्रभाव कुछ न कुछ हुआ। कुछ लोगों ने गांव की बनी चीजों का व्यवहार करने की आदत डाली और गांव में शुरू किए गए उद्योगों के सामने पहले की तरह प्रश्न यह नहीं रह गया कि जो चीजें पैदा की जायेंगी उनका क्या होगा। सवाल तो केवल यह रहा कि अधिक से अधिक माल किस तरह तैयार किया जाए। कुछ लोगों ने शहरों का सुखी ज़ीवन छोड़ कर गांवों का जीवन अपनाया। उनके गांवों में जाने से वहां के सामाजिक और आर्थिक जीवन पर बड़ा प्रभाव पड़ा, ऐसे लोगों की संख्या अधिक नहीं रही।

गांधीजी द्वारा बताए गए गांवों के महत्व को हम लोगों ने समझा होता और उसके अनुसार काम किया होता तो हमारे सामने आज की समस्याओं में से बहुत सी न होतीं। अन्न और वस्त्र के अतिरिक्त दूसरी भी बहुत सी आवश्यकताओं की पूर्ति होने में कोई कठिनाई न होती, और सारा देश अपनी शक्ति लगाकर भारत को एक आदर्श और बलवान देश बना डालता।

गांधीजी गांवों का सुधार स्थायी तौर पर करना चाहते थे। वे चाहते थे कि गांव के लोगों की शिक्षा भी ऐसी हो जिससे वे अपने जीवन पर, अपनी दिनचर्या पर, अपने काम धन्धे पर अभिमान कर सकें। उनकी योजना ऐसी थी जिसमें स्वास्थ्य, शिक्षा, खेती-बाड़ी और कला कौशल सबको एक साथ सम्मिलित किया गया था। इसीलिए उन्होंने नई तालीम की योजना बनाई थी। वे चाहते थे कि हाथ के काम को ही शिक्षा का मूल आधार बनाया जाए।

गांधीजी के मस्तिष्क में आदर्श गांव का एक स्पष्ट रूप था, और उसी को वे भारत की इकाई के रूप में देखना चाहते थे। उनका कहना था कि जब गांवों का भली भांति विकास हो जाएगा तो वहां

प्रतिभाशाली कलाकारों की कमी नहीं होगी। गांव के अपने कवि होंगे और अपने कलाकार। उनके अपने भवन-निर्माता, भाषा-विज्ञानी और अनुसंधान करनेवाले लोग होंगे। उस समय ये गांव ऐसे नहीं रह जाएंगे जहां जीवन के लिए उपयोगी वस्तुओं का अभाव होगा। आज ये गांव कूड़े के ढेर बने हुए हैं वे ही कल नन्दनकानन बन जाएंगे जहां उच्चकोटि के प्रतिभाशाली लोग रहेंगे जिन्हें न कोई ठग सकेगा और न कोई उनका शोषण कर सकेगा।

स्वदेशी का प्रचार

भारतीयों का अपने देश के प्रति सदा से बहुत अधिक प्रेम रहा है। प्राचीन ग्रन्थों में भारत का उल्लेख संसार के सर्व श्रेष्ठ देशों में हुआ है और भारतीय होने का गौरव समस्त भारतीयों के लिये चर्चा का विषय बना रहा। इस देश की प्राचीन रीति नीति, सामाजिक और धार्मिक संगठन, विद्या और कला सब पर स्वदेशीपन की गहरी छाप है। गांवों की सभ्यता अज्ञात युग से भारत की भूमि पर फूलती फलती और निरन्तर विकसित होती रही है।

परन्तु विदेशी शासन भारत के लिये भयङ्कर अभिशाप सिद्ध हुआ, राजनीतिक पराधीनता से यहां के निवासियों के अनेक अच्छे गुणों का नाश होने लगा। आर्थिक शोषण तथा संगठित सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था के अभाव में भारत एक सम्पन्न और अग्रणी देश से गरीब और पिछड़ा हुआ देश बन गया, पर यह सब होते हुए भी भारतीयों ने पूर्ण रूप से आत्म–समर्पण नहीं किया। अपनी मुक्ति के

लिए यह देश सदा प्रयत्न करता रहा। विदेशी शासकों की प्रत्येक दूषित चेष्टा का विरोध किसी न किसी रूप में अवश्य हुआ। १६५० में ब्रिटिश सरकार ने बंगाल के टुकड़े करने चाहे तो भारतवासियों ने विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार की योजना बनाई। यह अंग्रेजी सरकार की मनमानी का बहुत ही अच्छा जवाब था।

परन्तु गांधीजी जब भारतीय राजनीति के रंगमंच पर आये तो उन्होंने स्वदेशी की व्याख्या अधिक व्यापक और नये ढंग से की। उन्होंने स्वदेशी का अर्थ दूसरा ही लिया। उनके लिये स्वदेशी-आन्दोलन बदले या विरोध की भावना का परिचायक नहीं है। उनके मत में तो स्वदेशी वह भावना है जिससे प्रेरित होकर मनुष्य दूर की चीज़ों को छोड़ कर अपने आसपास की वस्तुओं पर निर्भर होता है और अपने आसपास के लोगों की सेवा में प्रवृत्त होता है। भारत में उन्हें इस भावना की कमी नहीं दिखाई दी। यह ध्यान देने की बात है कि भावना के प्रताप से भारत के लोगों ने लम्बी पराधीनता के समय में भी बहुत सी कठिनाइयों का सामना करते हुए अपने धर्म, अपनी भाषा और अपने सामाजिक रीति-रिवाजों की रक्षा की। यह इस बात का भी प्रमाण है कि विदेशी शासक बहुत प्रयत्न करके भारतीयों की आत्मा को पराधीन नहीं बना सके। आवश्यकता के अनुसार अपने रहन-सहन, रीति-रिवाज आदि में परिवर्तन करके जीवन को ऊंचा और उपयोगी बनाना और बात है। समय समय पर अपनी छानबीन करना, बुराई छोड़ते जाना और भलाई ग्रहण करते जाना तो जाति के जीवित होने की निशानी ही है।

स्वदेशी की भावना गांधीजी के जीवन में, उनके रोम रोम में रमी हुई थी। स्वदेशी के व्यवहार को वे सबके लिये आवश्यक धार्मिक कर्त्तव्य मानते थे। स्वदेशी की सीमा में दैनिक व्यवहार की विलायती वस्तुओं को छोड़ कर स्वदेशी का ग्रहण ही करना उनका उपदेश नहीं था। भाषा, रहन-सहन, संस्था-संगठन, शिक्षा-दीक्षा इन सबका उस में समावेश हो जाता है। गांधीजी इस बात को भलीभांति जानते थे कि जब तक स्वदेशी संस्कृति का रूप धारण नहीं कर लेती और हमारे जीवन में धर्म के समान उसका प्रवेश नहीं होता तब तक न तो वास्तविक रूप में स्वदेशी का प्रचार होगा और न हमारे राष्ट्रीय जीवन के निर्माण में ही उससे कुछ सहायता मिलेगी। स्वदेशी के आन्दोलन को वे रोक-

थाम या प्रतिक्रिया की वस्तु नहीं समझते थे। वे उसके द्वारा सारे राष्ट्र का पुनर्निर्माण देखना चाहते थे।

स्वदेशी को अपनाये बिना किसी भी राष्ट्र की उन्नति नहीं हो सकती। सारे संसार को अपना समझने का अर्थ यह कभी नहीं है कि आप अपनी और अपने देशवासियों की उपेक्षा करें, और बाहर के लोगों की सहायता के नाम पर अपनी स्थिति बिगाड़ते चले जायें। वह भी इस सीमा तक कि अन्त में आपको निर्बल और अविचारी समझ कर बाहर के लोग ही आप से घृणा करने लगें। हमें नम्रता और प्रेम का पाठ पढ़ना हो तो हमें स्वदेशी को ग्रहण करना ही पड़ेगा। जो व्यक्ति अपना ध्यान नहीं रख सकता, वह परिवार का क्या ध्यान रखेगा, जो परिवार का ध्यान नहीं रखेगा, वह समाज का क्या हित करेगा, जो समाज का हित नहीं कर सकता उससे देश का हित कभी न होगा। और जो देश का हित नहीं कर सकता, उससे संसार का कभी भला नहीं हो सकता। ऊपर से देखने पर देश या देशवासियों की सेवा में और विश्व-कल्याण की भावना में भले ही भेद दिखाई दे परन्तु ध्यान से देखने पर यही विदित होगा कि देश के हित में ही विश्व का हित है। हां, यह आवश्यक बात है कि देश का वह हित विश्व के अन्य देशों का शोषण न करता हो। शोषण की भावना यदि निकाल दी जाय तो उसी क्षण व्यक्ति का मानव-मात्र से आत्मिक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। गांधीजी ने शोषण की इसी भावना को दूर करने की चेष्टा की। परिणाम यह हुआ कि उनके द्वारा चलाया गया स्वदेशी का आन्दोलन केवल आन्दोलन न रह कर एक निश्चित सिद्धान्त बन गया, ऐसा सिद्धान्त जिसका जीवन से और मानवता से अटूट सम्बन्ध है।

यही कारण है कि गांधीजी से असहमत रहनेवाले लोगों ने भी सिद्धान्त रूप में गांधीजी की इस विचार-धारा के सामने सिर झुकाया। देश-विदेश सर्वत्र गांधीजी के इस सिद्धान्त का आदर हुआ। ऐसे देश भी जिनको इस सिद्धान्त से आर्थिक क्षति पहुंच सकती थी, गांधीजी के विनय और प्रेम के सामने नत-मस्तक हो गये।

भारत की जनता को स्वदेशी की जो प्रेरणा मिली, उसी का यह फल है कि भारत में बहुत से नये नये उद्योग चल पड़े, और उनकी अपूर्व उन्नति हुई।

कैबिनेट मिशन से भेंट करने के लिये बापू सरदार पटेल
तथा राजकुमारी अमृतकौर के साथ जा रहे हैं

शान्तिनिकेतन में बा और बापू

गांधीजी प्रार्थना सभा में जाते हुए। साथ में प्यारेलाल, राजगोपालाचारी तथा देवदास गांधी हैं

हरिजन बस्ती, दिल्ली में बेगम शौकतुल्ला अंसारी के साथ बापू हरिजन विद्यालय से बाहर आ रहे हैं

लाहौर के स्टेशन पर
थर्ड क्लास के डिब्बे से
बापू भाषण दे रहे हैं

बापू की ७८ वीं
वर्षगांठ पर भंगी
बस्ती में चर्खा दंगल

हरिजन फंड के लिये रुपया एकत्र करना बापू किसी क्षण भी नहीं भूलते थे

नोआखाली यात्रा में बापू एक मुसलमान किसान से बातचीत कर रहे हैं

बापू अपनी प्रार्थना सभा में जा रहे हैं

गांधीजी ने चर्खे को अपने स्वदेशी-आन्दोलन का प्रतीक माना था। उसका चक्र भाग आज भी स्वाधीन भारत की पताका पर अंकित है और स्वदेशी के गम्भीर अर्थ की ओर सारे संसार का ध्यान आकर्षित कर रहा है।

प्रकृति-प्रदत्त सम्पदाओं से भरपूर हमारा विशाल देश थोड़े ही समय में सुख और समृद्धि की भूमि हो सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि हम गांधीजी द्वारा पढ़ाये गये स्वदेशी के पाठ को क्रियात्मक रूप दें।

महान् समाज-सुधारक

गांधीजी ने भारतीय राष्ट्र के निर्माण से पहले उसके विभिन्न सामाजिक अंगों पर ध्यान दिया। उन्होंने देखा कि सामूहिक रूप से देश की उन्नति करने के लिये यह बहुत आवश्यक है कि समाज के भिन्न-भिन्न वर्गों के लोग उसमें योग-दान दें। परन्तु पहले तो चाहने मात्र से लोग योग दान नहीं देते, फिर समझा बुझा कर कर्त्तव्य का ज्ञान कराके उन्हें इसके लिए तैयार भी किया जाय तो विशेष लाभ नहीं हो सकता। काम करने के लिए क्षमता होनी चाहिए। बिना क्षमता के असहाय और निर्बल व्यक्ति जो स्वयं अपना हित नहीं कर सकता, वह समाज के हित का काम कैसे कर सकता है?

भारतीय समाज विशेषकर हिन्दू जाति शताब्दियों से ऐसी प्रथाओं और रूढ़ियों की शिकार बन गई है, जिसने उसके अंगों को कमजोर बना दिया है। परिणाम यह हुआ है कि समाज स्वयं पतन की ओर अग्रसर होता चला गया। क्या स्त्रियों और दलित जातियों के प्रति

किया गया व्यवहार भारतीय समाज के लिए जितना हानिकर है उतना ही लज्जास्पद नहीं है ? प्राचीन भारत में स्त्रियों का स्थान बहुत ऊंचा था। वैदिक और पौराणिक युग में उनका आदर पुरुषों से कम नहीं था। महाभारत और रामायण स्त्रियों की पुण्य गाथाओं से भरे पड़े हैं। पर इससे क्या यह तो हमारे लिए और भी लज्जा की बात है कि उन्नतिशील पूर्वजों की संतान होकर भी हम लोगों ने उनके जीवन का अनुकरण नहीं किया। गांधीजी ने स्त्रियों की दशा में सुधार करने के बहुत प्रयत्न किये।

गांधीजी का आश्रम केवल पुरुषों के लिए नहीं था। वहां स्त्रियों के लिए भी रहने, काम सीखने और समाज की सेवा करने की ऐसी ही व्यवस्था थी जैसी पुरुषों के लिए। गांधीजी के सम्पर्क में आकर जिस प्रकार अनेक पुरुष लोहे से कंचन बन गये, उसी प्रकार स्त्रियां भी असाधारण बन गईं। दूर दूर से आकर स्त्रियों ने पुरुषों के समान ही गांधीजी से प्रकाश पाया, और मानवता की सेवा में अपना जीवन अर्पित कर दिया।

गांधीजी चाहते थे कि स्त्रियों को उचित शिक्षा मिले, और वे समाज के लिए अधिक से अधिक उपयोगी सिद्ध हों। परन्तु वे इस बात के प्रबल विरोधी थे कि नारी पुरुष का पूरक न बन कर उससे आगे बढ़ने के लिये मुकाबला करती फिरे। इसमें सन्देह नहीं कि समाज में प्रचलित सभी नियमों के बनानेवाले पुरुष ही हैं और तरह-तरह की बातें स्त्रियों के सम्बन्ध में कही गई हैं। परन्तु यदि आदर्श स्त्रियों की संख्या समाज में बढ़ जाये तो वे नियम उनका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकते। कुछ दिनों में वे नियम अपने आप ही काल के गाल में समा जायेंगे।

स्त्रियों का सुधार करने के लिये गांधीजी ने उनमें जागृति फैलाने पर जोर दिया। उसके लिए शिक्षा-प्रचार को उन्होंने आवश्यक माना; पर साहित्य और विज्ञान की शिक्षा पाकर ही व्यक्ति शिक्षित नहीं होता। शिक्षा के बिना भी समझा बुझाकर आवश्यक बातें बताकर स्त्रियों को उनकी स्थिति से परिचित कराया जा सकता है और एक बार जब उन्हें वास्तविक स्थिति का ज्ञान हो जायेगा तो उनका सुधार अपने आप होने लगेगा।

गांधीजी यह मानते थे कि नारी पुरुष की संगिनी है और मानसिक दृष्टि से किसी प्रकार भी वह पिछड़ी हुई नहीं है। उसे इस बात का पूरा अधिकार है कि वह पुरुष के प्रत्येक काम में हाथ बंटाये, और पूर्ण स्वाधीनता का उपभोग करें। अपने-अपने क्षेत्र में पुरुष और स्त्री दोनों ही समान रूप से पूरे अधिकार रखते हैं और उनका उत्तरदायित्व भी समान है। समाज में प्रचलित रूढ़ि के फलस्वरूप हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि बड़े बड़े मूर्ख और निकम्मे पुरुष समझदार और योग्य स्त्रियों पर शासन कर रहे हैं! इसके विरुद्ध गांधीजी ने अपनी आवाज उठाई। स्त्रियों की पराधीनता के कारण समाज की प्रगति में आये-दिन आने वाली बाधाओं को गांधीजी बहुत अधिक अनुभव किया करते थे और वे चाहते थे कि उपयोगी शिक्षा के द्वारा स्त्रियां गृहस्थ जीवन के लिये उपयोगी बनें और समाज में अच्छे पारिवारिक जीवन का विकास और उन्नति हो।

गांधीजी ने स्त्रियों के सम्बन्ध में अपने विचारों को व्यावहारिक रूप दिया और इस बात से कौन इंकार कर सकता है कि बड़े बड़े सुधारकों के प्रचार से जो काम नहीं हुआ वह काम गांधीजी के प्रयत्न से हुआ। वे कहा करते थे कि उनकी अहिंसा की लड़ाई के लिए स्त्रियां पुरुषों से अधिक उपयोगी हैं। उन्हें स्त्रियों पर विश्वास था, और उसके लिए कारण भी विद्यमान हैं। गांधीजी ने स्त्रियों को जो काम सौंपा, उसे उन्होंने लगन से किया। आज भी देश के विभिन्न भागों में उनकी प्रेरणा से प्रेरित होकर स्त्रियां सेवा-कार्य कर रही हैं। उनकी संख्या भले ही थोड़ी हो, पर उनका महत्व कम नहीं है। सन् १९३० और सन् १९४२ के आन्दोलनों में भारतीय स्त्रियों ने बहुत अधिक धैर्य, साहस, वीरता और कार्य-कुशलता का परिचय दिया है। माता कस्तूरबा, सरोजिनी नायडू, राजकुमारी अमृतकौर, रामेश्वरी नेहरू, सुशीला नैयर, मीराबाई आदि कितनी ही स्त्रियों ने गांधीजी से प्रेरणा पाकर अपना जीवन समाज-सेवा के कार्य में लगा दिया है। आज भी लाखों स्त्रियां गांधीजी के दिखाये हुए मार्ग पर चलकर अपने को समाज के लिए उपयोगी बना रही हैं।

विवाह सम्बन्धी मामलों में गांधीजी बहुत दिलचस्पी लिया करते थे। बाल विवाह आदि की प्रथाओं को वे देश की उन्नति के लिए

घातक समझते थे। बाल विवाह का अर्थ नारी के विकास का मार्ग रोक सकने के सिवा और क्या हो सकता है? उनका स्वयं बाल-विवाह हुआ था। इस पर उन्होंने जो मन्तव्य बाद को अपनी आत्मकथा में लिखा वह बड़े मार्मिक हैं। वे शब्द यों हैं—"मेरे हृदय को बड़ी व्यथा होती है कि १३ वर्ष की उम्र में मेरा विवाह हुआ। आज जब मैं १२, १३ वर्ष के बच्चों को देखता हूं, और अपने विवाह का स्मरण हो आता है, तब मुझे अपने पर तरस आने लगता है, और उन बच्चों को इस बात के लिए बधाई देने की इच्छा होती है कि वे मेरी दुर्गति से अब तक बचे हुए हैं। १३ साल की उम्र में हुए इस विवाह के समर्थन मेंएक भी नैतिक दलील मेरे दिमाग में नहीं आती।"

इस दिशा में सुधार का एक उपाय वे यह भी समझते थे कि अल्पवयस्क पत्निंयों से विवाह करनेवाले पुरुष यदि चाहें तो उन स्त्रियों का सुधार कर सकते हैं। उन्हें आवश्यक शिक्षा देकर वे परिवार और समाज दोनों के लिए उपयोगी बना सकते हैं। विवाह की पद्धति और नियमों में भी गांधीजी ने संशोधन करने का प्रयत्न किया उन्होंने बहुत से अन्तर्जातीय विवाह करवाये, और विवाह के समय प्रचलित नियमों में रूढ़ी का पालन न करके ऐसे उपयोगी काम करने की शिक्षा दी जिनका प्रभाव विवाह के बाद के जीवन पर निश्चित रूप से अच्छा पड़ सकता है। उनके मत में धर्म एक व्यापक वस्तु है, जिसका विकास होता जा रहा है और यह विकास मनुष्य जाति के लिए हितकारी होना चाहिये। इसी लिये उनका मत था कि विवाह में मानव मात्र पर लागू होनेवाले नैतिक आदर्शों और नियमों का पालन किया जाय।

अछूतपन या अस्पृश्यता हिन्दू जाति का सबसे बड़ा कलङ्क है। गांधीजी का हृदय इस बुरी प्रथा से बहुत अधिक दुःखी हुआ था। वे कहा करते थे कि यह घृणित प्रथा भारत के उज्ज्वल दिनों में प्रचलित नहीं हुई होगी। इसको तो एक ऐसे वातावरण में प्रश्रय मिला होगा जब हमारी नैतिक अवनति की पराकाष्ठा हो गई होगी। यह घृणित बीमारी राजरोग के समान हमारे पीछे इस तरह लगी कि अब तक हम इससे अपना पीछा नहीं छुड़ा सके। जब तक यह अभिशाप हमारे पीछे लगा रहेगा जब तक इस पवित्र देश पर पड़नेवाली विपत्तियों के लिए यही कहा जायेगा कि अछूतों के प्रति होने वाले दुर्व्यवहार का ही यह

परिणाम है।

गांधीजी हिन्दू धर्म में प्रचलित छूआछूत की प्रथा को भगवान और उसकी सर्वश्रेष्ठ कृति मनुष्य दोनों के प्रति किया गया घोर अपराध मानते थे। वे कहते थे कि यह एक ऐसा विष है जो धीरे धीरे हिन्दू धर्म को प्राणहीन करता जा रहा है। उन्होंने नैतिक आधार पर उन धार्मिक नेताओं को खुली चुनौती दी जो शास्त्र और धर्म की दुहाई देकर इस घृणित अन्याय का समर्थन करते हैं। छूआछूत की इस भावना को वैयक्तिक और सामाजिक, स्वच्छता और पवित्रता के साथ मिला कर एक करनेवालों का सीधा सादा जवाब उनके पास था। गांधीजी स्वयं अपने जीवन में और अपने आश्रमों में जिस उत्कृष्ट स्वच्छता का पालन करते थे, उसकी समता मिलना कठिन है। वस्तुतः स्वच्छता की भावना की उन्होंने ऐसी सतर्कता से रक्षा की कि कोई भी छूआछूत का विरोधी यह नहीं कह सकता कि अछूतों के सम्पर्क में आने से समाज में गन्दगी फैलेगी। गांधीजी के आश्रम में रहनेवाले अछूत सदस्यों का जीवन किसी प्रकार भी किसी भी उच्च कुलीन हिन्दू से घटिया नहीं था। पवित्रता और स्वच्छता इत्यादि गुणों का सभी धर्मों में महत्त्व है, और यह ऐसा गुण है जिसके बिना न तो कोई जाति सुसंस्कृत बन सकती है और न उन्नति की ओर बढ़ सकती है।

इस घृणित प्रथा ने हिन्दू जाति को दुर्बल बनाया और सवर्ण तथा अछूत दोनों प्रकार के लोगों को उससे क्षति पहुंची। इससे करोड़ों अछूतों का स्वाभाविक विकास रुक गया था और उनकी उन्नति का मार्ग रुंध गया था। गांधीजी ने यह देख कर कि यह राक्षसी प्रथा स्वराज्य के मार्ग में ही बाधक नहीं है राजनैतिक दावपेंच के लिए कुटिल राजनीतिज्ञ इससे अनुचित लाभ ही नहीं उठा रहे हैं, अपितु राष्ट्र को सबल और संगठित बनाने के मार्ग में भी यह ऐसी बाधा है जो भावी भारत के स्वर्णिम स्वप्न को धूल में मिला देगी, इसका उन्मूलन करने में अपनी सारी शक्ति लगा दी। उन्होंने हिन्दू जाति में से ऊंच नीच की भावना को दूर करने का उपदेश दिया।

महात्मा गांधी के जीवन में अपने पराये का भेद न था। सारा जगत् उनका अपना था और सारे देश के हित के लिए वे जीवन भर संघर्ष करते रहे। किन्तु जब वह देखते थे कि भारत के लोग अपने

संकुचित स्वार्थ से प्रेरित होकर आपस में वैमनस्य फैला रहे हैं, तो उन्हें बहुत दुःख होता था। गांधीजी जानते थे कि संसार में संघर्ष के मूल में प्रधान कारण एक वर्ग के द्वारा दूसरे वर्ग का शोषण होता है, और यही अन्याय अनेक प्रकार की समस्याओं का रूप धारण करके अशांति पैदा करता है। भारत के विभिन्न वर्गों के लोग आपस में मेल-जोल से रहें और उनमें परस्पर झगड़े न खड़े हों इसके लिये उन्होंने दोहरा प्रयत्न किया। एक ओर उन्होंने दलित और पीड़ित लोगों को अधिकार दिला कर उन्हें ऊपर उठाने की चेष्टा की और दूसरी ओर रही सही अशांति को जड़ मूल से मिटाने के लिये उन्होंने बलिदान का उपदेश दिया। ब्रिटिश शासन के समय में प्रांतों की रचना तथा विभिन्न प्रकार के कारोबार और नौकरियों के मामले में बहुत मनमानी की गई है, देश को दबा कर अपनी मुट्ठी में रखने के लिये भी इन राजनीतिज्ञों ने ऐसी चेष्टा करके नई समस्याओं को जन्म दिया। गांधीजी इस राजनीति को भलीभांति समझते थे। वे चाहते थे कि भाषा के आधार पर प्रांतों की रचना और सभी क्षेत्रों में बिना किसी अड़चन के देशवासियों को प्रतिनिधित्व मिले।

गांधीजी की दृष्टि में नये पुराने और अपने पराये के लिये पक्षपात के लिये स्थान नहीं था। उनके समर्थन का विषय वही हो सकता था जिसके पक्ष में न्याय हो, जिसका आधार सच्चा हो, और जिससे लोकहित हो सके। समस्त संसार एक उनके विरुद्ध खड़ा होकर भी उनका निश्चय नहीं बदल सकता था। अछूतपन का अन्त करने के लिये उन्होंने सारे देश का दौरा किया, एक एक पाई की भीख मांगी और जब आवश्यकता जान पड़ी तो उन्होंने अपने प्राणों की बाजी भी लगाई। उन्होंने अछूतों का नाम हरिजन रखा। हरिजनों का हित ही उनके जीवन का सबसे बड़ा काम बन गया, और उसी का यह परिणाम है कि आज स्वाधीन भारत में उन्हें वही सामाजिक अधिकार प्राप्त हैं जो किसी भी स्वाधीन देश के नागरिक को प्राप्त हो सकते हैं। सत्य और अहिंसा को साधन बना कर और अपने हृदय में अटूट विश्वास लेकर गांधीजी ने छूतछात को दूर करने का काम आरम्भ किया और हम देखते हैं कि थोड़े से ही वर्षों में देश की विचारधारा बदल गई है। अछूतों के प्रति अच्छा व्यावहार करने की भावना प्रबल हो गई है।

कौन कह सकता है कि गांधीजी के महान् प्रयत्न के बिना इतने थोड़े समय में भारत के सवर्ण हिन्दुओं का हृदय इस प्रकार बदल जाता ? अफ्रीका और अमरीका का रङ्गभेद का फैला हुआ विषय जैसे अनर्थ करा रहा है, उसी की पुनरावृत्ति स्वाधीन भारत में भी हो सकती थी। किन्तु महात्मा गांधी की दूरदर्शी अन्तरदृष्टी ने इस भावी विपत्ति का अनुमान पहले ही लगा लिया था, और उसको इतना निर्बल बना दिया कि भावी भारत के नागरिक इस ओर से निश्चिन्त होकर आपस में न केवल प्रेम से रहेंगे, अपितु समस्त संसार के लिए एक सामाजिक आदर्श भी उपस्थित करेंगे।

गांधीजी समाज के सभी पीड़ित, दलित और संतप्त प्राणियों के लिए देव दूत के समान थे। उन्हें सबकी भीतरी दशा मालूम थी, और सबका कष्ट दूर करने के लिए वे दिनरात प्रयत्नशील रहा करते थे।

भारतवर्ष की स्वाधीनता के मार्ग में हिन्दू और मुसलमानों की एकता का प्रश्न बहुत ही उग्र रूप में सामने आया। महात्मा गांधी ने इसके महत्व को आरम्भ से ही समझ लिया था। भारत के ब्रिटिश शासकों ने अपनी पूरी शक्ति लगाकर भारत की साम्प्रदायिक समस्या को जटिल बनाया। उनसे जितना हो सका विद्वेष की इस अग्नि को भड़काने में वे सचेष्ट रहे। गांधीजी तथा दूसरे राष्ट्रीय नेताओं के सामने यदि हिन्दू मुस्लिम समस्या न होती तो आज से बहुत पहले अंग्रेजों को भारत छोड़कर जाना पड़ता और अब तक हमारा देश संसार के उन्नततम राष्ट्रों में गिना जा रहा होता। गांधीजी अपने आदर्श और सिद्धांत के अनुसार प्रेम और भ्रातृत्व के आधार पर इस समस्या को हल करना चाहते थे। और जिस प्रकार उन्होंने इसके लिए चेष्टा की उसका उदाहरण संसार में मिलना कठिन है। देश का विभाजन गांधीजी को स्वीकार नहीं था परन्तु उनके सामने एक ऐसी परिस्थिति पैदा हुई कि उनके लिये इसे मानना अनिवार्य हो गया क्योंकि वे पक्के जनतन्त्रवादी थे।

किसी भी समुदाय के लोगों को उनकी इच्छा के विरुद्ध कोई बात मानने के लिये विवश करना उन्हें पसन्द न था। विभाजन के बाद जब हिन्दू मुस्लिम दंगे होने लगे, तो उन्हें आंतरिक दुःख हुआ। अपनी संतान को आपस में लड़ते देखकर एक पिता को जितना कष्ट हो

सकता है गांधीजी को उससे कहीं अधिक कष्ट हुआ। भारत की स्वाधीनता, उनके समस्त जीवन के अथक प्रयत्नों की सिद्धि उनके हृदय को शान्त न कर सकी। शांति की स्थापना के प्रयत्न में वे गांव गांव, नगर नगर मारे फिरें। शरणार्थियों को सहायता पहुंचाने, पीड़ित आत्माओं को स्नेह और समवेदना के द्वारा शान्ति पहुंचाने के प्रयत्न में वे दिनरात लगे रहे। हिन्दू और मुसलमान का भेदभाव उन्हें कभी विचलित न कर सका। साम्प्रदायिक विद्वेष का तूफान हिमालय के समान उस अविचल और गम्भीर महात्मा से बारम्बार टकरा कर छिन्न भिन्न हो गया। बहुत से पथभ्रष्ट लोगों ने गांधीजी के उस स्वरूप को नहीं समझ पाया है। उनके हृदय की गहराई और आदर्श की ऊंचाई का अनुमान वे न लगा सके, और अन्त में ऐसे ही एक नवयुवक के हाथों साम्प्रदायिक विद्वेष की भयङ्कर ज्वाला को शांत करने के अपराध में उनको अपने प्राणों की आहुति देनी पड़ी। संसार के इतिहास में यह बलिदान अपूर्व है। इसकी तुलना किसी से नहीं हो सकती।

मादक द्रव्य निषेध

गांधीजी ने जहां मनुष्यों को ऊपर उठाने के लिए एक विशेष प्रकार का रचनात्मक जीवन व्यतीत करने का उपदेश दिया, नाना प्रकार से आर्थिक स्थिति को सुधारने और मानसिक, आध्यात्मिक दृष्टि से व्यक्ति को उन्नत बनाने के उपाय बताए वहीं उन्होंने मनुष्य को मनुष्यता से गिरानेवाले दुर्व्यसनों से दूर रहने पर भी जोर दिया। इस दृष्टि से मादक द्रव्यों के निषेध के लिए किए गए उनके प्रयत्न विशेष महत्व रखते हैं।

गांधीजी स्वयं एक आदर्श जीवन व्यतीत करते थे। चाय, तम्बाकू या किसी प्रकार के अन्य पदार्थों के सेवन के वे विरोधी थे। जिनकी शरीर को आवश्यकता नहीं अथवा जो मनुष्य की अस्वभाविक शक्तियों को उत्तेजित करनेवाले होते हैं, स्वाभाविक रूप से नियमित जीवन व्यतीत करनेवाले व्यक्ति के लिए किसी भी उत्तेजित पदार्थ की आवश्यकता नहीं है। इस बात के वे स्वयं जीवित प्रमाण थे। गांधीजी में

काम करने की अपार शक्ति थी। निरन्तर काम करना और थक जाने पर विश्राम करके फिर काम में लग जाना यही उनका जीवन क्रम था। अपने अन्तिम समय तक जिस उत्साह, स्फूर्ति और तत्परता से गांधीजी ने काम किया, वह इस बात का प्रमाण है कि आदर्श जीवन के लिए किसी प्रकार की उत्तेजना की अपेक्षा नहीं है।

भारतीय स्वाधीनता के आन्दोलन के लिए गांधीजी ने जिस कार्यक्रम को अपनाया, उसमें उन्होंने मद्य-निषेध को महत्वपूर्ण स्थान दिया। हिन्दू मुस्लिम एकता और अस्पृश्यता निवारण के साथ कांग्रेस ने सन् १९२० में ही मादक द्रव्य निषेध का कार्य अपने हाथ में लिया। यह गांधीजी की प्रेरणा का ही फल था। गांधीजी ने कहा है, अगर हमें अपना ध्येय अहिंसक पुरुषार्थ के द्वारा प्राप्त करना है, तो अफीम, शराब आदि चीजों के व्यसन में फंसे हुए अपने करोड़ों भाई बहनों के भविष्य को हम सरकार की मेहरबानी या मर्जी पर नहीं छोड़ सकते। इसके लिए गांधीजी ने बहुत से उपाय बताए। उन्होंने चिकित्सकों से अपील की कि वे लोग शराब और अफ़ीम जैसी चीजों के मजे में फंसे हुए लोगों को ऐसे व्यसनों से छुड़ाने के उपाय निकालें। उन्होंने स्त्रियों और विद्यार्थियों से भी कहा कि वे प्रेम और सेवा के द्वारा व्यसन में फंसे हुए लोगों को उनसे छुड़ाने का प्रयत्न करें क्योंकि इस मामले में स्त्रियों और विद्यार्थियों द्वारा किए गए काम का प्रभाव व्यसन में फंसे हुए लोगों के हृदय पर अधिक अच्छा पड़ेगा। इसके अतिरिक्त उन्होंने कांग्रेस पर भी इस बात के लिए जोर डाला कि उसकी ओर से मनोरञ्जन के ऐसे केन्द्र खोले जाएं जहां थके मांदे मजदूर विश्राम करें, और जलपान के लिए सस्ती चीजें उन्हें मिल सकें। अथवा खेल कूद में भाग लें।

गांधीजी के राजनीतिक कार्यक्रम की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि जहां वह राजनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होता था, वहीं उसका मूल्य रचनात्मक दृष्टि से भी समाज के लिए बहुत अधिक होता था। सन् ३० के आन्दोलन में शराब की दुकानों पर धरना देने और ताड़ी के काम आनेवाले ताड़ और खजूर के वृक्षों को काटने का कार्यक्रम भी इसी प्रकार का था। कानून भंग करने के कारण जहां कांग्रेस के प्रति लोगों की आस्था इसलिए बढ़ी कि वह राजनीति में साहस के साथ कदम

उठाने की क्षमता रखती है, वहीं लाखों व्यक्तियों के हृदय पर यह प्रभाव भी पड़ा कि मादक द्रव्यों का प्रयोग करना समाज की अवनति का कारण है, और उससे जितनी जल्दी मुक्ति मिल जाय उतना ही अच्छा है।

गांधीजी के दूसरे उपायों के समान ही मादक द्रव्य निषेध का आन्दोलन भी दो प्रकार के काम सिद्ध करनेवाला आन्दोलन था। इसके द्वारा एक ओर जहां विदेशी सरकार की आर्थिक दृढ़ता को ठेस लगी वहीं दूसरी ओर समाज को नैतिकता की ओर ले जाने और करोड़ों व्यक्तियों को अपना जीवन सुधारने की प्रेरणा मिली। प्रांतों को कांग्रेस का शासन स्थापित होने पर जगह जगह मादक द्रव्य निषेध का कार्य आरम्भ हुआ और उसमें बहुत सफलता भी मिली।

प्रायः देखा जाता है कि मजदूर लोग और दूसरे निम्न श्रेणी के लोग अपनी आमदनी का बहुत बड़ा भाग शराब पीने में खर्च कर देते हैं। उससे एक ओर उनकी जीवन शक्ति का ह्रास होता है और उनमें तरह तरह की बुराइयां पैदा हो जाती हैं, वहीं दूसरी ओर उनकी आर्थिक स्थिति भी अधिक बिगड़ जाती है। नशा सेवन करनेवाला व्यक्ति तब तक अपने को मनुष्य नहीं समझता जब तक उसे नशा मिल नहीं जाता, और जब वह नशा सेवन कर लेता है, तब दूसरे उसे मनुष्य समझना छोड़ देते हैं। इस प्रकार ध्यान से देखा जाए तो नशेबाज आदमी समाज के लिए बिलकुल ही अनुपयोगी हो जाता है। समाज की उन्नति के लिए विशेष कर एक ऐसे देश में जहां की स्थिति सुधारने का काम बहुत महत्त्वपूर्ण है यह आवश्यक है कि लोगों में से नशा सेवनकी बुराई पहले दूर की जाए। किसी प्रकार का सुधार तब तक चल नहीं सकता जब तक कि ऐसी बुराइयां बहुसंख्यक लोगों में मौजूद हैं।

मादक द्रव्यों पर खर्च होनेवाले धन की बड़ी राशि को देखकर स्तम्भित हो जाना पड़ता है। बृटिश शासन काल में विभिन्न प्रांतों द्वारा इन प्रांतों को केवल शराब से लगभग १७ करोड़ रुपए की आमदनी होती थी। अफीम, भंग, गांजा, चरस आदि दूसरे पदार्थों से होनेवाली इससे अलग है। मद्रास प्रांत को ही लीजिए उसकी कुल आय १६ करोड़ रुपए थी, जिसमें ४ करोड़ आबकारी से प्राप्त होते थे। इस प्रकार रुपए प्राप्त करके गरीब जनता को दोहरी हानि पहुंचाई जाती थी।

शराब पिलाकर एक ओर उनको नैतिक दृष्टि से पतित बनाया जाता था और दूसरी ओर उनके गाढ़े पसीने की कमाई को टैक्स के रूप में छीनकर कुछ ऊंचे तबके के लोगों की सुख सुविधा पर खर्च किया जाता था। गांधीजी ने मादक द्रव्य निषेध आन्दोलन चलाकर जो कार्य किया उसकी जितनी भी प्रशंसा की जाए थोड़ी है।

शिक्षा प्रचार

गांधीजी ने राष्ट्र की उन्नति के लिए स्वदेशी को जितना महत्व दिया है, राष्ट्रीय शिक्षा को उन्होंने उससे किसी प्रकार भी कम महत्व नहीं दिया। गांधी जी इस बात को भली भांति समझते थे कि हमारी शिक्षा विदेशियों के हाथ में है, और अपने स्वार्थ के लिए उन्होंने अपना पाठ्यक्रम ऐसा बना लिया है जिससे सरकारी शिक्षा संस्थाओं में पढ़नेवाले नवयुवक विद्यार्थियों के मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव पड़ता है। वे अपना पाठ्यक्रम ऐसा रखते हैं जिससे उनमें अपने देश के इतिहास, संस्कृति और राजनीति के सम्बन्ध में गलत धारणायें पैदा हो जाती हैं और देश और समाज के प्रति कर्त्तव्य का ज्ञान उन्हें नहीं रहता। कांग्रेस में गांधीजी के पदार्पण करने से पहले भी देश के बहुत से नेताओं ने शिक्षा सम्बन्धी इस व्यवस्था को हानिकारक समझा था और उसके विरुद्ध आवाज भी उठाई थी परन्तु यह आवाज कभी देश व्यापी नहीं बन सकी थी।

सन् १६२० में जब गांधीजी ने असहयोग आन्दोलन आरम्भ किया, तो कांग्रेस के कार्यक्रम में राष्ट्रीय शिक्षा को स्थान मिला। गांधीजी राष्ट्रीय शिक्षा को केवल एक आन्दोलन का रूप न देकर उसे रचनात्मक कार्यक्रम का अंग बनाना चाहते थे। वे चाहते थे कि राष्ट्रीय शिक्षा ग्रहण करनेवाले लोगों में स्वावलम्बन का भाव जाग्रत हो और जनता यह समझे कि प्रयत्न करके वह सभी मामलों में स्वावलम्बी बन सकती है। असहयोग आन्दोलन के फलस्वरूप जिन विद्यार्थियों ने सरकारी संस्थाओं से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया, उनके लिए शिक्षा की व्यवस्था बहुत आवश्यक थी। इस बात को ध्यान में रख कर देश के प्रत्येक भाग में राष्ट्रीय विद्यालय खुलने लगे। कहीं कहीं विश्वविद्यालयों की भी स्थापना हुई जिन्हें विद्यापीठ कहते हैं। इन संस्थाओं की सब से बड़ी विशेषता यह थी कि ये सरकारी नियंत्रण से मुक्त थी। इनमें शिक्षा का माध्यम देशी भाषा को बनाया गया, और इतिहास पढ़ाने का दृष्टिकोण बिलकुल राष्ट्रीय हो गया। जीवन की सादगी और चरित्र पर विशेष रूप से जोर दिया गया और विद्यार्थी लोग अपने अध्यापकों के साथ राजनीतिक आन्दोलनों में भाग लेने लगे। विद्यार्थियों और अध्यापकों के अच्छे सम्बन्ध के कारण इन संस्थाओं का अनुशासन बहुत ही अच्छा हो गया, परन्तु असहयोग आन्दोलन के बन्द हो जाने पर इन संस्थाओं में विद्यार्थियों की संख्या कम हो गई। फिर भी इस प्रकार की बहुत सी संस्थाएं अपने आदर्श को सामने रखकर चलती रहीं।

ऐसी संस्थाओं की स्थापना का एक बहुत अच्छा प्रभाव यह हुआ कि सरकारी संस्थाएं भी इनसे प्रभावित हुई। आंशिक रूप से शिक्षा का माध्यम बदला, राष्ट्रीय गान को स्थान मिलने लगा और विद्यार्थियों पर राजनीति में भाग लेने के सम्बन्ध में पहले जैसा नियंत्रण नहीं रह गया।

गांधीजी राष्ट्रीय सस्थाओं के संचालन में बहुत अधिक दिलचस्पी लेते थे उन्होंने बाद को मौलिक शिक्षा की योजना बनाकर भी देश के सामने रखी। जिसके अनुसार प्रत्येक बालक और बालिका को शिक्षित बनाना इसका उद्देश्य है। गांधीजी का कहना था कि निरक्षर होने की अपेक्षा साक्षर होना अच्छा है, परन्तु इसके साथ ही यह भी आवश्यक है कि प्रत्येक विद्यार्थी को ऐसा सामान्य ज्ञान अवश्य मिले जिससे वह

नागरिक के कर्त्तव्यों को समझ सके। गांधीजी की योजना में बड़ी विशेषता यह है कि इसमें काम के द्वारा बालक को शिक्षित बनाने का उपाय किया गया है। इसे वर्धा योजना के नाम से पुकारा जाता है।

राष्ट्रीय शिक्षा के क्षेत्र में यह एक नया प्रयोग है। इसे कार्यान्वित करने के लिए गांधीजी ने तालीमी संघ की स्थापना की और नये ढंग के शिक्षक तैयार करने की व्यवस्था की गई। गांधीजी की इस योजना का स्वागत केवल राष्ट्रीय क्षेत्र में ही नहीं हुआ, अपितु भारत सरकार के शिक्षा सलाहकार श्री सार्जेंट और मद्रास के श्री स्टैथन आदि ने भी किया।

शिक्षा का अर्थ केवल साक्षरता नहीं है। अक्षर ज्ञान से हमें एक माध्यम मिलता है जिसके द्वारा हम ज्ञान की बातें जान सकते हैं। व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए तो प्रत्येक ज्ञान विज्ञान और कला कौशल का ज्ञान ही असली महत्व रखता है। पिछले दिनों दुर्भाग्य से एकांगी शिक्षा के प्रचार से लोगों ने यह समझ लिया कि साहित्य, गणित या भूगोल की दो चार पुस्तकें पढ़ लेना और विश्वविद्यालय की डिग्री प्राप्त कर लेना ही वास्तविक शिक्षा है। इस भ्रान्त धारणा का परिणाम यह हुआ कि हाथ से किये जानेवाले कामों के प्रति पढ़े लिखे लोगों की उपेक्षा हो गई और उसे वे हीन दृष्टि से देखने लगे। पढ़े लिखे लोगों का महत्वपूर्ण पदों पर होना इसमें और अधिक सहायक हुआ। गांधीजी ने इसके विरुद्ध आवाज उठाई और हाथ से किए जानेवाले कामों के प्रति आदर की भावना का प्रचार किया। उन्होंने कहा कि प्रत्येक मनुष्य को कुछ न कुछ शारीरिक परिश्रम अवश्य करना चाहिये। मौलिक शिक्षा की अपनी योजना में गांधीजी ने इसीलिये हाथ से काम करने पर बहुत जोर दिया। हमारा देश अनेक प्रकार के ज्ञान विज्ञान, कला कौशल आदि का केन्द्र रहा है और यह सब इसीलिये ही सम्भव हुआ कि हमारी शिक्षा प्रणाली में व्यावहारिकता थी। कला और विज्ञान का जीवन से सम्बन्ध था।

गांधीजी ने प्रौढ़ व्यक्तियों को शिक्षित करने पर भी जोर दिया। साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि उन्हें अक्षर ज्ञान कराने के साथ साथ ही जुबानी तौर पर बातचीत के जरिये सच्ची राजनीतिक शिक्षा दी जाय। प्रौढ़ शिक्षा का कार्य बहुत महत्वपूर्ण है। विदेशों में निरक्षरता

निवारण के लिये प्रौढ़ व्यक्तियों को शिक्षित करने के लिये बहुत से तरीके काम में लाये गये हैं। अपने देश के ९५ प्रतिशत अशिक्षित लोगों को शिक्षित करने का और दूसरा कोई तरीका नहीं है।

बच्चों को प्रारम्भिक शिक्षा देने के सम्बन्ध में गांधीजी का यह निश्चित मत था कि मातृभाषा के माध्यम से ही बच्चों की शिक्षा आरम्भ की जाये। इसके बिना बच्चों का न तो ठीक तरह मानसिक विकास हो सकता है और न शिक्षा को लोकप्रिय ही बनाया जा सकता है। प्रजातंत्रवादी व्यवस्था में नागरिकों का समझदार होना बहुत जरूरी है और नागरिकों को शिक्षित बनाने के लिए उन्हें साक्षर बनाना अत्यन्त आवश्यक है। मातृ-भाषा के द्वारा ही सर्वसाधारण को शिक्षित बनाया जा सकता है क्योंकि दूसरी भाषा में दी गई शिक्षा की जड़ कभी भी गहरी नहीं हो सकती। इसके विरुद्ध जो भी उपाय किए गए हैं वे सब असफल हुए हैं। थोड़े से लोग यदि विशेष प्रयत्न करके विदेशी भाषा में बहुत अधिक मंहगी शिक्षा प्राप्त कर लें तो शिक्षा की समस्या हल नहीं होती बल्कि इससे एक प्रकार की प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है। सुविधाप्राप्त पढ़े लिखे लोगों और सुविधाहीन थोड़े बहुत पढ़े लिखे या अनपढ़ जन समाज के मध्य ऐसी गहरी और चौड़ी खाई बन जाती है जो समाज को संगठित और बलवान नहीं बनने देती। भारतवर्ष की सामाजिक समस्या इसका उदाहरण है। पढ़े लिखे लोगों और गैर पढ़े लोगों में जो अन्तर दिखाई पड़ता है वह वर्ण व्यवस्था अथवा आर्थिक वैषम्य से उत्पन्न होने वाले अन्तर से किसी प्रकार कम नहीं है।

गांधीजी ने सभी प्रकार की सामाजिक विषमताओं के मूल कारण को पकड़ने की चेष्टा की थी और उनकी ओर देश का ध्यान आकर्षित किया था। भाषा के सम्बन्ध में भी उन्होंने बहुत छान बीन की थी और प्रत्येक प्रांतीय भाषा को समुचित महत्व देने का उन्होंने बराबर प्रयत्न किया। भारत की विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं को सीखने का प्रयत्न करके उन्होंने यह बताया कि भारत की प्रत्येक प्रान्तीय भाषा जनता की भाषा है और प्रत्येक प्रांतीय भाषा अपना विशेष स्थान रखती है। पिछले दिनों देश के विभाजन के बाद बंगाल में होने वाले साम्प्रदायिक झगड़ों के कारण जब उन्हें बंगाल जाना पड़ा तो इस अवस्था में भी उन्होंने बंगला भाषा सीखी। उनका यह प्रयत्न

अनुकरणीय है। जनता के हृदय की बात जनता की भाषा में ही गांधीजी सुनना चाहते थे।

यह तो रही प्रान्तीय भाषाओं की बात। समस्त देश के लिए एक राष्ट्रभाषा बनाने के सम्बन्ध में गांधीजी ने बहुत पहले काम आरम्भ किया था। वे इस बात को भली भाँति जानते थे कि अंग्रेजी भाषा ने जहां एक ओर देश के लिए राष्ट्रभाषा का विकास नहीं होने दिया है, वहीं उसने प्रांतीय भाषाओं का भी गला घोंट दिया है। प्रांतीय भाषाओं को अपने स्थान से गिराने की घटना ब्रिटिश शासन के अत्यन्त दुःखदायी कार्यों में से है। गांधीजी ने ठीक ही कहा है कि राजा राममोहन राय कहीं बड़े सुधारक और लोकमान्य तिलक कहीं बड़े विद्वान् हुए होते, यदि उन्हें अंग्रेजी में सोचने और मुख्य रूप से अंग्रेजी में ही अपने विचार प्रकट करने की अड़चन का सामना आरम्भ से ही न करना पड़ता। पिछले युग में बिना अंग्रेजी पढ़े हुए भी चैतन्य, कबीर, शिवाजी आदि बड़े बड़े व्यक्ति इस देश में प्रसिद्ध हो गए हैं।

गांधीजी चाहते थे कि समस्त देश के लिये सब से अधिक प्रचलित भाषा देवनागरी और उर्दू लिपि में लिखी हुई हिन्दी या हिन्दुस्तानी को राष्ट्र भाषा का स्थान दिया जाय। इसके लिये उन्होंने अपने जीवन के लगभग तीस वर्षों से कार्य किया है। दक्षिण भारत में जहां के निवासियों के लिए राष्ट्र भाषा की समस्या सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है उन्होंने राष्ट्र भाषा हिन्दी के प्रचार के लिये बहुत अथक परिश्रम किया। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की स्थापना ही इसी उद्देश्य से की गई थी। हिन्दी और उर्दू की दो कठिन शैलियां बनाकर भाषा के दो अलग प्रकार के वे विरोधी थे। और चाहते थे कि नागरी और उर्दू दोनों लिपियों में एक सी ही भाषा बरती जाय। अंग्रेजी के प्रभाव से खिन्न होकर गांधीजी ने कहा था, विदेशी शासन की अनेक बुराइयों में से देश के युवकों पर घातक रूप से लादा गया विदेशी माध्यम इतिहास में सबसे बड़ी बुराई है, इसने राष्ट्र की शक्ति को नष्ट कर दिया है और विद्यार्थियों के जीवन के दिन कम कर दिये हैं। इसने उन्हें सर्व साधारण से अलग कर दिया है और शिक्षा को व्यर्थ ही मंहगा बना दिया है। यदि यह प्रक्रिया आगे भी जारी रखी गई, तो राष्ट्र की आत्मा को नष्ट कर देगी। इसलिए जितनी जल्दी शिक्षित भारत अपने आपको

विदेशी माध्यम के जादू से मुक्त कर लेगा उतना ही उनको और जनता को इससे लाभ पहुंचेगा। गांधीजी इस बात का सदा ध्यान रखते थे और यथासम्भव हिन्दी में ही भाषण देते और पत्र व्यवहार करते थे।

राष्ट्रभाषा के समान ही राष्ट्रीय लिपि के सम्बन्ध में गांधीजी का सिद्धान्त निश्चित था। वे चाहते थे कि भारत की सभी भाषाओं के लिये विशेषकर उनके लिये जिनमें संस्कृत के शब्दों की अधिकता है देवनागरी लिपि का उपयोग किया जाय। उनका कहना था कि बहुत अधिक लिपियों के प्रयोग से विभिन्न प्रांतों के लोगों के लिये आपस के मेलजोल में बाधा पड़ती है। रोमन लिपि को सारे देश की लिपि बनाने के सम्बन्ध में गांधीजी का दृढ़ विचार यह था कि रोमन लिपि राष्ट्र की लिपि नहीं हो सकती। वह न तो हमारी भावना के अनुकूल है और न वैज्ञानिक है। विशेषता है तो छपाई और टाइपराईटर की परन्तु उसके सीखने में उत्पन्न होने वाली कठिनाइयों के सामने देवनागरी का सीखना भारतीयों के लिए सुगम है क्योंकि प्रांतों की लिपियां देवनागरी का रूप हैं। मुसलमान हो या हिन्दू प्रांतीय भाषाओं को सीखने के लिये प्रांतीय लिपि का जानना आवश्यक है और इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि देवनागरी का सीखना हिन्दू और मुसलमान दोनों के लिये सरल और स्वाभाविक है। एक मात्र अंग्रेजी भाषा सीखने का लालच ही हमें रोमन लिपि की ओर आकृष्ट करता है और अंग्रेजी भाषा ऊपर से लादी गई भाषा है, तथा जनता से इसका कम से कम सम्बन्ध है। ऐसी स्थिति में रोमन लिपि के प्रचार की बात तभी तक उठती है जब तक साधारण जनता उठकर खड़ी नहीं हो जाती, साधारण जनता का रोमन लिपि से किसी प्रकार का भी सम्बन्ध नहीं है। और जो वस्तु जनता की नहीं है या जनता जिसे अपनाने के पक्ष में नहीं है उसका अस्तित्व ही क्षणिक है।

गांधीजी एक उच्चकोटि के लेखक और पत्रकार भी थे, यंग इंडिया, नवजीवन, हरिजनसेवक आदि पत्रों के द्वारा और अपने लिखे हुए ग्रन्थों तथा देश और समाज, में संघर्ष रखनेवाले विभिन्न विषयों पर लिखे गये अपने लेखों से गांधीजी ने देश को जगाने और उसे स्वाधीनता दिलाने में अद्वितीय कार्य किया।

गांधीजी ने न केवल शिक्षा और भाषा के क्षेत्र में ही इस प्रकार कार्य किया अपितु भारत की संस्कृति को एक नया रूप और नया जीवन देने के लिए जो भी प्रयत्न किए जा सकते थे किए। देश के बड़े से बड़े विद्वान् साहित्यिक, पत्रकार और समाज सुधारक सबसे निकट सम्बन्ध रखकर सभी क्षेत्रों को गांधीजी ने प्रभावित किया और देश को एक नया दृष्टिकोण प्रदान किया। देश के साहित्य और कला में नवजीवन तथा नवनिर्माण की भावना का संचार हुआ।

अर्जुन प्रेस, श्रद्धानन्द बाजार, देहली द्वारा मुद्रित।